ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

ओ३म् क्रतो स्मर ।

वर्ष–6, अंक–11	जुलाई 2013	आषाढ
सृष्टि संवत् 1960853114	विक्रमी संवत् 2070	दयानन्दाब्द 190

सूयवसाद्‌भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमहन्ये विश्वदानी पिब शुद्धमुमकमाचरन्ती ॥

ऋग्वेद 1.164.40

जब तक माताजन वेदवित् न हों तब तक उनके संतान भी विद्यावान् नहीं होते हैं। जो विदुषी हो स्वयंवर विवाह कर, सन्तानों को उत्पन्न कर और उनको अच्छी शिक्षा देकर उन्हें विद्वान् करती हैं, वे गौओं के समान समस्त जगत् को आनन्दित करती हैं ।

सम्पादक

मूलचन्द गुप्त

ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली–110045

ओ३म्

ओ३म्–सुप्रभा

वैदिक सभ्यता–संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

• *परामर्श*

डॉ० धर्मपाल आर्य

(पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार)

ए/एच–16, शालीमार बाग,

दिल्ली–110088

दूरभाष–011-27472014

011-27471776

• *सम्पादक*

मूलचन्द गुप्त

(पूर्व प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली)

• *प्रकाशक*

मूलचन्द गुप्त,

अध्यक्ष, **ओम्–प्रतिष्ठान**

कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली–110045

दूरभाष–9650886070

011-25394083

ई-मेल-Ompratisthan@gmail.com

ओ३म्–सुप्रभा में प्रकाशित लेखों के सभी विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है । वे विचार लेखक के अपने हैं ।

प्रकाशक–मुद्रक–स्वामी–मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं० 17, कैलाशनगर, दिल्ली–31 (फोन–22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली– 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र–दिल्ली

उद्देश्य

✧ वैदिक सभ्यता, संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता का पोषण करना, वैदिक विचार–धारा के अनुसार मानव–निर्माण करना, समरस और समेकित समाज का संगठन करना, विश्व भर में सुख और शान्ति की स्थापना करने का प्रयास करना **ओम्–प्रतिष्ठान** का मुख्य उद्देश्य है ।

✧ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय समय पर विभिन्न बहुआयामी गतिविधियों का संचालन किया जाएगा ।

✧ रचनात्मक और प्रेरक साहित्य का सृजन, प्रकाशन और प्रसारण का, इन गति–विधियों में प्रमुख स्थान होगा ।

✧ इस पत्रिका में समय–समय पर आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, नैतिक, वैश्विक चेतना जागृत करने से सम्बन्धित विषयों पर मौलिक लेख तथा समाचार प्रकाशित किए जायेंगे ।

✧ **ओ३म्** परमपिता परमात्मा का निज नाम है । परमात्मा इस सृष्टि का नियन्ता है । सृष्टि से सम्बन्धित सभी विषयों का इसमें समावेश किया जाएगा ।

✧ **ओ३म्–सुप्रभा** का प्रकाशन पूर्णतया निजी स्तर पर किया जा रहा है । उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रति मास देश–विदेश के आर्य विद्वानों, लेखकों, उपदेशकों, कार्यकर्ताओं, प्रकाशकों एवं संस्थाओं को ओ३म्–सुप्रभा **निःशुल्क** भेजी जा रही है।

✧ लघु–पत्रिका के कारण, प्रकाशनार्थ लेख न भेजें ।

✧ सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे अपने सुझाव भेजकर कृतार्थ करते रहें ।

ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

रचना, स्थिति और प्रलय, कर्मों का फल जिस का विधान है ।
ओ३म् सुप्रभा ज्ञान अनुपम, सुरभित जिस से जन कुसुम प्राण है ।।

वर्ष–6, अंक–11	जुलाई 2013	आषाढ
सृष्टि संवत् 1960853114	विक्रमी संवत् 2070	दयानन्दाब्द 190

ओ३म्–महिमा

ता अमृता आपः

–महात्मा नारायण स्वामी

अथ येऽस्योर्ध्वारश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवाऽऽदेशा मधुकृतः । ब्रह्मवै पुष्पं । ता अमृता आपः ॥

वे वा एते गुह्या आदेशा एतद् ब्रह्माभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्य ꣳ रसोऽजायत् ॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥

ते वा इते रसानाꣳरसा वेदाहि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानामृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्य मृतानि ॥

छान्दोग्य उपनिषद् 3.5.1-4

अर्थ–और जो इस (आदित्य) की ऊपर की किरणें हैं, वे ही ऊपर की मधु नाड़ियां हैं । (गुह्याः, आदेशा, एव) गूढ़ आदेश (शिक्षायें) ही शहद की मक्खियां हैं (ब्रह्म, एव, पुष्प, ताः, अमृताः, आपः) ब्रह्म-वेद ही फूल हैं और वे अमृत रस पूर्ण हैं ॥

निश्चय उन इन गूढ़ आदेशों ने इस वेद को तपाया उसके तपने से यश, तेज इन्द्रिय बल और भोज्य अन्न (रूप) रस प्रकट हुआ ॥

वह झरने लगा और उसने आदित्य का सब ओर से आश्रय लिया ।

निश्चय वह यह है जो (आदित्यस्य, मध्ये, क्षोभत, इव) सूर्य के बीच में कंपन सा है ॥

(ते, वा, एते, रसानाम्, रसाः) निश्चय वे ये (यश, तेज आदि रसों के रस हैं) (हि, वेदाः, रसाः) क्योंकि वेद रस हैं (तेषाम्, एते, रसाः) उसके ये रस हैं । (वै, तानि, एतानि, अमृतानां, अमृतानि) निंश्चय वे इन अमृतों के अमृत हैं । (हि, वेदाः, अमृताः, तेषां एतानि, अमृतानि) क्योंकि वेद अमृत हैं और उनके ये अमृत हैं ॥

ओं योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन देव पीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ (अथर्व, 11.02.23)

हे ओम् ! नमन

–देवनारायण भारद्वाज

हृद हाथ माथ जग जोड़ जतन ।
हे ओंम् ! नमन, हे ओम् ! नमन् ॥
दस शक्ति सृजित मञ्जुलियाँ रे ।
मेरी संगठित अंगुलियाँ रे ।
प्रभु दसों दिशाओं में अभिनत ।
तुझको करबद्ध अंजलियाँ रे ।
हो जगन मगन ध्रुव धरा-गगन ।
हे ओंम् ! नमन, हे ओंम् ! नमन् ।
भू-अन्तरिक्ष के लोक जहां ।
तेरा दृढ़तर आलोक वहां ।
अरि यज्ञहीन सज्जन द्रोही ।
पाते मरणान्तक शोक यहाँ ।
हो भवन-भवन में हवन-पवन ।
हे ओंम् ! नमन, हे ओंम् ! नमन् ।
तूने अंगुली शक्वरी करीं ।
हिय हस्त शक्ति सुन्दरी भरीं ।
प्रिय परोपकार संकेतक, ।
तूने महिमा मञ्जरी वरीं ।
हे रुद्र ! रुदन हो शमन सृजन ।
हे ओम् ! नमन, हे ओम् ! नमन् ।

सम्पादकीय

ओ३म् सुप्रभा का जुलाई 2013 का अंक सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है । इस अंक में हमने यथापूर्व 'स्मरण-अनुकरण-नमन' तथा 'आर्यसमाज चिन्तन-अनुचिन्तन' के अन्तर्गत वैदिक विद्वानों के सामयिक लेख दिए हैं । समय-समय पर लिखे गए ये लेख आज भी प्रासंगिक हैं तथा हमारा मार्ग प्रशस्त करते हैं । 'इतिहास के वातायन से' के अन्तर्गत हमने शास्त्रार्थ महारथी पं० मुरारी लाल शर्मा से सम्बन्धित एक प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत किया है। जुलाई मास में हमने पं० आत्माराम अमृतसरी के सम्बन्ध में ज्ञानी पिण्डी दास का लेख, पं० भीमसेन विद्यालंकार का लेख, पं० मुरारीलाल शर्मा के सम्बन्ध में पं० मंगलदेव आर्य महोपदेशक का लेख, डॉ० रामनाथ वेदालंकार का लेख तथा डॉ० दिलीप वेदालंकार के सम्बन्ध में डॉ० प्रशान्त वेदालंकार का लेख दिया है । डी० ए० वी० मैनेजिंग कमिटी के उपाध्यक्ष तथा हिन्दी प्रकाशन के पुरोधा श्री विश्वनाथ जी के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं । इस अंक में श्री भगवान् दास जी के महाकाव्य 'दयानन्द सागर' के कुछ अंश दिए हैं । आर्य विद्वानों के सत्परामर्श हमारे मार्गदर्शक हैं । हम आशा करते हैं कि पाठक अपने विचार अवश्य लिखें । इससे हमें पत्रिका का अच्छा बनाने में सहायता मिलती है । इसी मास एक सुधी पाठक का प्रस्ताव आया कि हम सभ्यता की अपेक्षा संस्कृति को वरीयता दें तथा अपनी पत्रिका को राष्ट्रीय स्तर से ऊपर उठाकर अन्तर्राष्ट्रीय बनाएं क्योंकि हम तो 'यत्र विश्वं भवति एक नीडम्' तथा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के पोषक हैं । महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी संसार का उपकार करने की बात आर्यसमाज के नियमों में सम्मिलित की है । हम इस दिशा में प्रयत्नशील रहेंगे ।

प्राकृतिक आपदा

पिछले दिनों उत्तराखण्ड और हिमाचल प्रदेश में अत्यधिक वर्षा के कारण जनबल और धन की अत्यधिक हानि हुई है । आर्यसमाज समस्त विश्व के कल्याण की कामना करता हुआ, इन प्रान्तों में हुई क्षति की पूर्ति के लिए यथासम्भव सहयोग के लिए प्रस्तुत है । सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा और प्रान्तीय सभाएं इस दिशा में सहयोग कर रही हैं । आर्य संस्थाओं-डी० ए० वी० और गुरुकुलों के अधिकारी भी इस कार्य में सहयोग कर रहे

हैं । विदेशों में बसे आर्य भाई भी पीछे नहीं रहेंगे ।

यदि हम गम्भीरता से विचार करें तो विकास और नियोजन यदि सही दिशा में किए जाएं तथा संतुलित रूप से किए जाएं तो ऐसी त्रासदी को टाला जा सकता है । गत वर्षों हिमालय की प्राकृतिक सम्पदा का अनावश्यक रूप से दोहन हुआ है तथा पर्यावरण संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया गया है । विकास तो किया जाना चाहिए, पर स्थान विशेष की पारिस्थितियों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए । हमें प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितना आवश्यक हो । हम त्याग पूर्वक भोग करें । अनावश्यक अर्थ प्राप्ति के गृध्र दृष्टि न रखें । हिमालय हमारे देश का अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील क्षेत्र है । यही सही है कि विकास की परियोजनाओं से सभी जन सामान्य का कल्याण संभव है, परन्तु यह उतना ही किया जाए जितना आवश्यक हो । भूस्खलन की कीमत पर तो कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए । पर्यटन को बढ़ावा देना तो सही है, पर वह उसी प्रकार क्यों न हो जैसा सदा से होता आया है ।

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण पर गम्भीर चिन्तन प्राप्य है । सम्पूर्ण जैव मण्डल को सुरक्षा कवच देने वाले दो तत्त्व हैं–प्रकृतिक तत्त्वः अग्नि, वायु, जल, भूमि, नदी, पर्वत आदि; मानवीय तत्त्वः अप्राप्त की प्राप्ति में प्रकृति से प्राप्त का संरक्षण । वेद में कहा गया है–'हे भूमिमाता मैं जो तुम्हें हानि पहुंचाता हूं, शीघ्र ही उसकी क्षति पूर्ति हो जावे' ।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम पर्यावरण की रक्षा करें, स्वयं जाग्रत हों तथा दूसरों को भी जाग्रत करें ।

—सम्पादक

आर्य साहित्यसेवी विश्वकोश

दस खण्डों में प्रस्तावित 'आर्यसाहित्य सेवी विश्वकोश' का लेखन कार्य प्रगति पर है । सुविज्ञ पाठकों से विनम्र निवेदन है कि यदि उन्होंने अपना परिचय, चित्र तथा लेखन-कार्य का विवरण अभी तक नहीं भेजा है, तो कृपया अपना परिचय शीघ्र भेजें जिसमें नाम, चित्र, माता-पिता का नाम, पति/पत्नी का नाम, जन्मस्थान और जन्म तिथि (निधन स्थान और निधन तिथि केवल दिवंगत के लिए), जीवन के उल्लेखनीय प्रसंग, लेखन कार्य का विस्तृत परिचय आदि कृपया शीघ्र भेजें । *—सम्पादक*

शास्त्रार्थ महारथी पं० मुरारीलाल शर्मा

[आर्यसमाज के महान शास्त्रार्थ महारथी, विद्वान्, प्रचारक पं० मुरारीलाल शर्मा का जन्म गाजियाबाद उत्तरप्रदेश में सन् 1862 में हुआ था । आपने अपने जीवनकाल में पादरियों, मौलवियों और पौराणिक पण्डितों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये तथा सर्वथा विजय प्राप्त की । आपका निधन 22 जनवरी सन् 1927 को दिल्ली में हुआ । –सम्पादक]

संस्मरण

–स्व० पं० मंगलदेव, आर्य महोपदेशक

मौलवी अब्दुल हक से "रूह माद्दे की कदाभत" पर शाहदरा में स्व० पं० रामचन्द्रजी देहलवी से शास्त्रार्थ था । उसमें स्वर्गीय श्री पं० मुरारीलालजी शर्मा मन्त्री गुरुकुल सिकन्दराबाद सभापति का आसन सुशोभित कर रहे थे । देहलवी जी ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए और यह सिद्ध किया कि तीन चीजें अनादि हैं अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति । मौलवी अब्दुल हक ने उन प्रमाणों को अस्वीकार कर दिया । इस पर पं० मुरारीलाल जी शर्मा ने पं० रामचन्द्रजी से कहा कि आप मुझे समय दें तो मैं कुछ कहूं । इस पर पं० रामचन्द्र जी ने अपनी ओर से बोलने को श्री पं० मुरारीलाल जी शर्मा को अवसर प्रदान किया । पं० जी ने मौलाना को सम्बोधित करके कहा कि मौलाना साहब, मैं आपसे पूछता हूं कि आप खुदा की हस्ती को मानते हैं या नहीं ? मौलाना ने कहा जरूर मानता हूं । फिर शर्मा जी ने कहा कि आप अपनी हस्ती को भी मानते हैं, कि मैं हूं । मौलाना बोला हां मानता हूं । मैं मुबाहिसा कर रहा हूं फिर इन्कार कैसे कर सकता हूं । शर्मा जी ने पूछा कि यह जो दुनियां है जिसमें आप और हम रह रहे हैं और शास्त्रार्थ कर रहे हैं यह है कि नहीं ? मौलाना बोले यह भी है तब शर्मा जी ने कहा कि यही तो त्रैतवाद है । आप खुदा, अपनी हस्ती और दुनिया के अस्तित्व को जब मानते हैं तो आपका सिद्धान्त गलत साबित हो गया ! इसका उत्तर मौलाना से कुछ न बन पड़ा और शास्त्रार्थ में आर्यसमाज के सिद्धान्त की पूर्ण विजय हुई । उपस्थित जनता ने बड़े हर्षोल्लास के साथ करतल ध्वनि की और वैदिक धर्म की जय, पं० मुरारीलाल शर्मा की जय के घोष से आकाश गुंजा दिया । ●

राजरत्न पं० आत्माराम 'अमृतसरी'

—स्व० ज्ञानी पिण्डीदास

अमृतसर के एक सामान्य सद्गृहस्थ के घर श्री मा० आत्माराम जी का प्रादुर्भाव हुआ था । वे शिक्षा प्राप्ति के अनन्तर विद्यार्थी-प्रशिक्षण कार्य में प्रवृत्त हुए । किशोरावस्था में ही महर्षि दयानन्द के जादू से अभिभूत होकर उन्हें आर्यसमाज की लगन लगी । पंजाबी हाईस्कूल में अध्यापन कार्य से उन्हें जो भी समय मिलता, आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में लगाते थे । आप सदैव अपने युक्ति प्रवाह, प्रमाण-भण्डार, अपूर्व ऊहा और विनोद-प्रियता आदि सद्गुणों के कारण पौराणिक पण्डितों, मुसलमान-मौलवियों तथा ईसाई पादरियों के साथ शास्त्रार्थ समारोह में सफलतापूर्वक मुकाबिला करते थे । समूचे आर्यसमाज में आपको आर्यन-फिलासॉफर और शास्त्रार्थ-महारथी आदि नामों से सर्वदा स्मरण किया जाता था ।

आपका हृदय बन्धुत्व की भावना से परिपूर्ण था । आपके आरम्भिक जीवन में एक स्मरणीय घटना घटित हुई । आप अपने विशाल-भवन (बाग झण्डासिंह) में स्वाध्याय में तल्लीन थे कि गली में से किसी युवती के स्वर-ताल मिश्रित मधुर संगीत ने आपका ध्यान आकृष्ट कर लिया । देखने पर पता चला कि कोई देवी गाना सुनाकर अपनी आजीविका के लिये पैसे मांगती फिरती है । मास्टरजी ने उसे ठहराकर आर्यसमाज के भजनों को गाने की और अपने निर्वाहार्थ आर्यसमाज से वेतन ग्रहण करने की प्रेरणा की । देवी ने उसे स्वीकार किया और आयुभर संन्यासिन बनकर यत्र-तत्र सर्वत्र आर्यसमाज का प्रचार और ऋषि-गुण कीर्तन करती रही । उसके निधन के पश्चात् आज भी उसकी स्मृति में निर्मित दुर्ग्याण के समीप स्थित "गंगा-कुटीर" महिलाओं में आर्यसमाज के प्रचार का भारी केन्द्र बना हुआ है ।

रियासत बड़ौदा के सुधारवादी महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने अपने कुलगुरु और वैदिक विद्वान् श्री स्वामी नित्यानन्दजी के सदुपदेश से अपने राज्य में शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजकीय सुधारों के विशाल आयोजन बनाये । शताब्दियों से हिन्दू समाज से चिपटे छुआछुत के भयंकर कष्ट से इसे विमुक्त कराने के लिये दलितोद्धार के कार्यक्रम में सफलता प्राप्त्यर्थ 1908 ई० में हमारे मास्टरजी को अमृतसर से आमन्त्रित कर उन्हें इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स के पद पर नियुक्त किया गया । आपकी सत्प्रेरणा से योग्य छात्रों को हाईस्कूलों और कॉलेजों में छात्रवृत्तियां दी जाने लगीं । मास्टरजी के प्रचाराभियान का यह फल हुआ कि राज्य भर की सेनाओं में अभिवादन के लिए उच्च-गम्भीर स्वर से "नमस्ते" की गुंजार सुनाई देने लगी। आपकी कार्य-कुशलता से प्रसन्न होकर महाराज ने पहले आपको क्रमशः "राजरत्न" और पश्चात् राज्य की सर्वोत्कृष्ट उपाधि "राज्यमित्र" से सम्मानित किया । राज्यभर में हिन्दी शिक्षा की अनिवार्यता, बाल-विवाह पर प्रतिबन्ध आदि महत्व के सुधार प्रचलित हुए । ●

महर्षि वेदव्यास और महर्षि दयानन्द सरस्वती

–स्व० पं० भीमसेन विद्यालंकार

वैदिक संहिताओं और वैदिक साहित्य के साथ वेदव्यास और ऋषि दयानन्द के नामों का विशेष सम्बन्ध है । द्वापर के अन्त में, भारत में धन-धान्य-ऐश्वर्य की अधिकता के कारण यज्ञयागों और कर्मकाण्ड की मुख्यता हो गई थी । मीमांसा दर्शन इसका ज्वलन्त उदाहरण है । वेदमन्त्रों की यज्ञपरक व्याख्या के कारण कई विचारक इन यज्ञप्रधान वेदों के पण्डितों को "वेदवादरता:" कह कर भी स्मरण करते थे । वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन ने इस विचारधारा को मर्यादा में रखने के लिये ज्ञानसाध्य प्रधान उपनिषदों के आधार पर वेदान्त दर्शन की रचना की । स्थान स्थान पर वैदिक संहिताओं के मंत्रों का भी उल्लेख किया। महाभारत की रचना करते हुए "इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थ समुपबृंहयेत्" के अनुसार महाभारत में अनेक स्थानों पर वेदसंहिताओं की महत्ता का भी प्रदर्शन किया । वेदमंत्रों को उस समय के कर्मकाण्डियों ने रूढ़ि शब्दों तथा यज्ञयागों से जकड़ दिया था । वेदव्यास ने शब्द को रूढ़ि प्रधान मानने की प्रवृत्ति के विरुद्ध शब्दों को भौतिक मानने की विचारधारा का समर्थन किया ।

वर्तमान युग में मुसलमानों के शासनकाल के बाद यूरोपीयन लोगों के भारत में पधारने पर इसी प्रकार की अवस्था पैदा हो गई थी । भारत के क्षत्रिय राजवंश परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से लड़ रहे थे । उनके पुरोहित या अध्यापक-ब्राह्मण राजवंशों के गुलाम या उन पर आश्रित हो रहे थे । जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण कर्मो से हीन होकर वैदिक परम्पराओं को कलंकित कर विदेशियों के दास बनकर उनके सामने हाथ बांधे खड़े रहते थे । काशी के विद्वान् पण्डित रूढ़िप्रधान शब्दों की गुत्थियां सुलझाने में लगे हुए असली अर्थो को भूल चुके थे । ऐसे समय में दयानन्द ने वेदसंहिताओं के महत्व को जनता के सामने रखा था । उनकी मूल कापी आवश्यकता पड़ने पर विदेशों से भी मंगाई गई । वह वेदसंहिताओं को केवल ज्ञानचर्चा का विषय ही नहीं मानते थे । वह मानवसमाज की रचना वेदसंहिता के सिद्धान्तों के अनुसार करना चाहते थे । उस समय देश के सामने राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याएं उग्र रूप में उपस्थित थीं । साधारण सुधारक इन समस्याओं का हल स्मृति-ग्रन्थों तथा सूत्र-ग्रन्थों के अनुसार करते थे । इन ग्रन्थों में दैशिक, कालिक बन्धनों से जकड़ी रूढ़ियों को धर्म का चोला पहनाया हुआ था । स्त्री, जाति, ब्राह्मण, विवाह, राजनीति, यज्ञ-याग, स्पृश्यास्पृश्य, म्लेच्छ-स्वदेशी, समुद्र-यात्रा, भक्ष्याभक्ष्य, मूर्तिपूजा, अवतारवाद की पौराणिक विचारधाराओं के कारण भारतीय समाज का दिमाग संकीर्ण तथा प्राणशक्ति रहित हो गया था । तब ऋषि दयानन्द ने इस सारी परिस्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का मुख्य उपाय वेदसंहिताओं का पुनः प्रचार, उनकी यौगिक शब्दों वाली व्याख्या को ही माना । इसके लिए ही उन्हें महीधर, उव्वट, सायण तथा यूरोपीयन वेदभाष्यकारों की वेदव्याख्याओं का खण्डन करना पड़ा । ●

कविवर भगवानदास जी के महाकाव्य–

"दयानन्द सागर" के कुछ अंश (4)

अजमेर में पादरी के साथ सृष्टि-रचना पर शास्त्रार्थ

कार्तिक पूर्णिमा के अवसर, लगता भारी मेला पुष्कर ।
आ रुके जोधपुर घाट ऋषी, अगले दिन विज्ञापन देकर ॥
लग गई वहां सत्संग सभा, कांपे मत-पंथी सुन खबरें,
था मार्ग शीर्ष वदि चौथी मिति, उन्निस सौ पैंतिस संवत्सर ॥

ऋषि लौट गये अजमेर पुनः, वहां किये कई उत्तम भाषण ।
आयतें सुनाकर बाइबल की, कर रहे इसाइयत आलोचन ॥
यूरोपी पादरी कहा उन्हें, भेजो बायबल की वे आयत,
कर रहे समीक्षा तुम जिनकी, भेजे लिख उत्तर हम तत्क्षण ॥

लिखकर स्वामी चौबीस वाक्य, भेजे उनपर करके दस्तक ।
रह गये सोचते समाधान, मिल पादरि सारे दस दिन तक ॥
सुदि मार्गशीर्ष चौथी मिति को, आये पादरि संवाद हेतु,
आये संवाद श्रवण करने, भारी संख्या में यहां दर्शक ॥

ऋषि कहा पुनः-'पादरियों संग, संवाद हुए सब बे-हरकत ।
आशा है शान्ति रहे अब भी, परमेश्वर दे सबको बरकत ॥
ऋषि कहा-"लिखा तौरेत मध्य, पृथ्वी बे-डोल बनावट है,
सर्वज्ञ ईश के सभी काम, बे-डोल नहीं, तरतीब-सहित ॥"

बोले इस पर पुनि पादरिग्रे, "बे-डोल अर्थ यहां है निर्जन ।"
ऋषि कहा-"प्रथम आयत में है, प्रभु किया प्रथम नभ-धरा सृजन ॥
थी शून्य और बे-डोल धरा, जब 'शून्य' शब्द है विद्यमान,
'बे-डोल' शब्द का अर्थ पुनः, हो सकता है क्योंकर निर्जन ॥"

कह उठे पादरी उत्तर में,-"होते सब भाषाओं-अन्दर ।
हैं एक अर्थ के कई शब्द," ऋषि चाहें थे देना उत्तर ॥
पादरि बोले-"हों एक वाक्य के केवल दो ही प्रश्नोत्तर,
अन्यथा वाक्य चौबीसों पर, ना आज बोल पायें प्रियवर ॥"

ऋषि दिया बहुत बल-"कहने दो, तीसरी बार भी कुछ अक्षर ।
ना करो समय की कुछ चिन्ता, बाकी पर होंगे कल उत्तर ॥"
ना हुए पादरी जी सहमत, ऋषि उससे किया प्रश्न दूजा-
"है लिखा उसी आयत में ही, प्रभु-आत्म डोलती जल ऊपर" ॥ *(क्रमशः)*

—भगवानदास—9213494923

तीन सौ विद्यार्थियों के पिता–

शास्त्रार्थ महारथी पण्डित मुरारीलाल शर्मा

एक दिन माघ मास का बरसाती दिन था भयंकर शीत बरस रहा था पशु-पक्षी सन्न से बैठे थे। गांव वाले इस अवसर पर गुड़ चने खाकर, मकई का चबेना चबाकर सर्दी से त्राण पाते हैं, ये संस्कार ब्रह्मचारियों को याद आ रहे थे। वे आपस में घुसपुस कर रहे थे, पर चना गुड़ या मकई कहां से लावें? कुछ छात्रों ने मंत्रणा की और सीधे शर्माजी के मध्यम पुत्र महेन्द्र देव के पास जा पहुंचे और बोले, 'महेन्द्र ! अद्यवयं चणकंसगुडं वाञ्छामः, पश्यसि न कियत् शैत्यं वर्तते ? गृहे अभ विष्याम तदा नूनं अलप्स्यामहे, त्वंचत् इच्छसि, कार्य भविष्यति मातरं गत्वा कथय, माता तुभ्यं याचितं धनं दास्यति, अस्माकं शीत निवारणं च भविष्यति।'

ब्रह्मचारी महेन्द्रदेव मां के पास जाकर गिड़गिड़ाया अम्मा केवल एक आना दे दे, देख न मेरे साथी मेरे पीछे पड़े है।, और सर्दी कितनी गजब की है। मैंने आज तक कभी तुझसे एक पाई भी तो नहीं मांगी, आज तो दे ही दे मां एक आना ! और भोली भाली माता ने अपने प्यारे बेटे के सिर पर हाथ रखकर शपथ खाई 'बेटे ! तू क्या जाने ? ये बेचारे ब्रह्मचारी क्या जाने ? मेरे पास पैसे कहां हैं, तेरे पिता जी देवें तब न होवें, वे तो एक पैसा भी नहीं देते, तू रूआसा मत हो, देख अभी तेरे पिता आते होंगे उनके हाथ पैर छूकर एक आना मागूंगी शायद आज की सर्दी देखकर दे ही दें, मुझे तो विश्वास नहीं होता कि वे एक आना तो क्या एक पाई भी देंगे।

बाहर चार पांच ब्रह्मचारी महेन्द्रदेव की प्रतीक्षा में खड़े थे कि गुरुकुल के पिता आ गये, आते ही गरज कर बोले:–क्यों रे ! महेन्द्र ! तू किससे पूछकर घर में आया है तू जानता है न कि परिवारों में ब्रह्मचारियों का आना निषिद्ध है जा भाग जा यहां से नहीं तो...वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि मां की आवाज आयी। क्यों डांट रहे हो बच्चे को ? गुरुकुल क्या चला रहे हो कि जान मुसीबत में आ गई है। बच्चा ही तो है मां से मिलने आज आ गया तो क्या हो गया है। सुनते हो आज तो महेन्द्र एक आना लेने के लिये आया है तुमने तो मुझे कभी कुछ नहीं दिया पर पहली बार इस बच्चे को तो दे दो, आज तो कितनी ठंड है बेचारे ब्रह्मचारी चना गुड़ खाकर गर्मी पा लेंगे। गांव की याद आ रही है इन सब बच्चों को, वैसे मैं जानती तो हूं तुम एक

(शेष पृष्ठ 15 पर)

उपनिषदों की शिक्षण-पद्धति

–स्व० डॉ० रामनाथ वेदालंकार

उपनिषदें भारतीय संस्कृत-साहित्य के अनमोल रत्न हैं । इनमे जिस आकर्षक, सरल पद्धति से गहन से गहन विषयों का ज्ञान दिया गया है उसके कारण ये देश-विदेश में सर्वत्र लोकप्रिय सिद्ध हुई है । अध्यात्म विद्या के उच्च ग्रन्थों के रूप में तो ये प्रख्यात हैं ही, पर पाठक इनमें शिक्षा-पद्धति के अनेक मनोवैज्ञानिक तत्वों की भी उपलब्धि कर सकते हैं ।

रोचक शैली

सर्वप्रथम जिस ओर हमारा ध्यान जाता है वह है इनकी रोचक शैली । उपनिषत्कार बताना चाहता है कि जगत् में प्रत्येक क्रिया ब्रह्म के द्वारा हो रही है, तो वह हमें दर्शनशास्त्र की गहन गुत्थियों में न डालकर हमारे सामने एक कहानी प्रस्तुत कर देता है–"एक बार ब्रह्म ने विजय प्राप्त की । उनकी विजय से सब देवों की महिमा बढ़ गयी । इससे देवों को अभिमान हो गया । वे समझने लगे, यह हमारी ही विजय है । ब्रह्म ने सोचा, इनका अभिमान दूर करना चाहिए । वह यक्ष के रूप में उनके सामने प्रकट हुआ, पर देव नहीं जान सके कि यह यक्ष कौन है ? उन्होंने अग्नि से कहा–जाओ पता लगाकर आओ । अग्नि दौड़कर उसके पास गया । ब्रह्म ने पूछा–तुम कौन हो ? अग्नि गर्व से कहा–मेरा नाम 'अग्नि' है, मेरा नाम 'जातवेदस्' है । ब्रह्म ने पूछा–तुममें क्या शक्ति है ? अग्नि बोला–पृथ्वी पर जो कुछ है उसे मैं जला सकता हूं । ब्रह्म ने उसके आगे एक तिनका रखा और कहा–इसे जलाकर दिखाओ । अग्नि ने पूरी शक्ति लगा ली, पर उसे न जला सका । वह लौट आया और देवों से बोला–मैं नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है । तब देवों ने वायु को भेजा । वायु के आगे भी उसने तिनका रख दिया और कहा–इसे उड़ाकर दिखाओ । पर वायु उसे न उड़ा सका और लौट आया । फिर देवों ने राजा इन्द्र को भेजा, पर इन्द्र के सामने वह यक्ष अन्तर्धान हो गया । इन्द्र उसे आकाश में खोजता फिरा, अन्त में उसे 'उमा' के दर्शन हुए, जिसने इन्द्र को बताया कि यह 'ब्रह्म' है । इसी के विजय से तुम महिमाशाली हुए हो, तुममें जो भी महिमा है वह तुम्हारी अपनी नहीं, अपितु इस ब्रह्म की दी हुई है (केन उप०, तृतीय खण्ड) ।" इस कथानक द्वारा कैसी रोचक शैली से उपनिषद् के ऋषि ने यह तथ्य समझाया है कि प्रकृति में अग्नि, वायु, सूर्य आदि देव तथा शरीर में वाणी, प्राण, चक्षु आदि देव-सब ब्रह्म से शक्ति पाकर कार्य कर रहे हैं ।

उपनिषत्कार यह स्पष्ट करना चाहता है कि शरीर में वाणी, चक्षु,

श्रोत्र, मन आदि में कौन सबसे बड़ा है तो उसकी लेखनी निम्नस्थ कथा सृजन कर देती है–"शरीर की चक्षु, श्रोत्र आदि शक्तियां परस्पर विवाद करने लगीं। सब कहने लगीं–मैं बड़ी हूं, मैं बड़ी हूं । वे निर्णय के लिए पिता प्रजापति के पास पहुंची और कहने लगीं–भगवन् ! हममे कौन श्रेष्ठ है ? प्रजापति ने कहा–तुममे से प्रत्येक बारी-बारी से शरीर से बाहर निकले । जिसके बाहर निकलने से शरीर पापिष्टतर हो जाये वही सबसे बड़ा है । पहले वाणी निकली, वह एक वर्ष बाहर रहकर लौटी और पूछने लगी–मेरे बिना तुम सब कैसे जीवित रहे ? सबने उत्तर दिया–गूंगे भी तो संसार में जीते हैं। वैसे ही हम जीवित रहे । फिर चक्षु बाहर निकली, वह भी एक वर्ष बाहर रहकर लौटी और उसने आश्चर्य से देखा कि शरीर तो वैसा ही जीवित है । मेरे बिना तुम कैसे जीवित रहे–उसने पूछा । उत्तर मिला–जैसे नेत्रहीन लोग जीवित रहते हैं । फिर श्रोत्र-शक्ति बाहर निकली । वह भी एक वर्ष बाहर रही। लौटने पर उसे भी उत्तर मिला–जैसे बधिर मनुष्य जीते हैं, वैसे ही तुम्हारे बिना हम जीवित रहे । फिर मन बाहर निकला । वह भी वर्ष भर बाद लौटकर आया । परन्तु देखता क्या है कि शरीर तो पूर्ववत् जीवित है । उसे भी उत्तर मिला–जैसे बालक बिना मनोव्यापार किये जीते हैं, वैसे हम जीवित रहे । अन्त में प्राण बाहर निकलने लगा । पर उसके बाहर निकलते ही वाणी, चक्षु, श्रोत्र आदि सब उसके साथ-साथ घिसटने लगे । इससे सबने समझ लिया कि प्राण ही इसमें श्रेष्ठ है ।" (छान्दोग्य०, प्रपा०, खण्ड 1) ।

उपनिषद का ऋषि यह बताना चाहता है कि मरणोत्तर मनुष्य की क्या गति होती है, तो वह यम और नचिकेता की रोचक कहानी रच देता है, जिसमें कहानी की कला पूर्णरूप में निखर उठी है और जो आज भी पाठकों के लिए वैसी ही नई है जैसी कई शताब्दी पूर्व थी, कथा के सूत्र में पिरोये हुए गम्भीर रहस्यों के मोती जिसमें अपनी अनुपम आभा प्रदर्शित कर रहे हैं । छान्दोग्य उपनिषद् की सत्यकाम जाबाल की रहस्यमयी कथा किसे आकृष्ट नहीं करती, जिसमें ऋषभ, अग्नि, हंस और मद्‌गु द्वारा क्रमशः ब्रह्म के एक-एक पाद का ज्ञान दिया गया है । उपकोसल की कथा भी कितनी रोचक है, जिसमें अग्नियों ने उसे आत्मज्ञान दिया है । श्वेतकेतु का यह आख्यान कितना रमणीय है जिसमें उसे उसके पिता द्वारा उस तत्व का उपेदश दिया गया है जिस एक के जान लेने से अश्रुत श्रुत हो जाता है, अविचारित विचारित हो जाता है, अविज्ञात विज्ञात हो जाता है । इसी प्रसंग में मधु-मक्षिका, नदी, वृक्षशाखा, न्यग्रोधफल, लवण, आंखों पर पट्‌टी बांधे पुरुष, मरणासन्न पुरुष, तथा चोर के दृष्टांत से श्वेतकेतु को जो 'तत् श्वमसि' का उपदेश दिया गया है, वह भी उपनिषत्कारों की रोचक शैली का परिचायक

(शेष पृष्ठ 18 पर)

डॉ० दिलीप वेदालंकार

–स्व० डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

[आर्यसमाज के अग्रणी नेता, वैदिक विद्वान्, प्रचारक, व्याख्याता डॉ० दिलीप वेदालंकार का जन्म 11 जुलाई 1936 को गुजरात के आणंद जिले के ग्राम मोगर में हुआ था । आपकी शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी और दिल्ली विश्वविद्यालय में हुई । आपको गुरुकुल कांगड़ी की विद्यामार्तण्ड, उपाधि से शताब्दी वर्ष में अलंकृत किया गया । आप का निधन शिकागो अमेरिका में 21 मई 2011 को हुआ । आपने कुछ ही दिन पूर्व अपनी पुस्तक Know Your Religion *लाला चतुरसेन गुप्त आर्य पुस्तकालय को भेजी थी । –सम्पादक]*

अब पश्चिमी जगत् अपनी घोर भौतिकता से ऊब अनुभव करने लगा है । अपना घरबार छोड़कर नवयुवतियां अपने-अपने देशों के वातावरण से तंग आकर इधर-उधर भटक रहे हैं । वहां के लोग अब भारत के योग एवं शान्ति की खोज में इधर आकृष्ट होने लगे हैं । हिन्दूधर्म की शान्ति और आध्यात्मिकता के पवित्र उपदेश अब उनको भाने लगे हैं । इस समय भारतीयता से अनुप्राणित विद्वान हिन्दू नवयुवकों का दोहरा कर्तव्य हो गया है। एक ओर उन्हें भारतीय जनता को पश्चिम की अन्धी आंधी में बहने से रोकना है तथा दूसरी ओर पश्चिमी देशों में जा जाकर वहां के लोगों को अपनी संस्कृति का अमर पाठ पढ़ाना है । प्रस्तुत लेख में मैं ऐसे ही नवयुवक की कहानी कह रहा हूं जो आज की इस आवश्यकता को अनुभव करके देश विदेश में घूम-घूम कर आज के ऊंचे मनुष्य को शान्ति प्रदान करने के प्रयत्न में लगा है । उसने विश्व के अधिकांश बड़े राष्ट्रों में जाकर वैदिक धर्म के इस फार्मूले का-कि आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समुचित समन्वय ही विश्वशान्ति का आधार है-प्रचार किया है ।

डॉ० दिलीप वेदालंकार गुजरात के एक अत्यन्त प्रसिद्ध सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ता स्वनाम धन्य–स्व० श्री आशाभाई के सुयोग्य पुत्र हैं । अपने धर्म एवं संस्कृति के प्रति निष्ठा भाई दिलीप ने विरासत में ही प्राप्त की । बाद में गुरुकुल सूपा (नवसारी), गुरुकुल सोनगढ़, गुरुकुल झज्जर और वेद विद्यालय यूसुफ सराय, नई दिल्ली आदि संस्थाओं में आपने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की तथा वैदिक धर्म और संस्कृति की विश्व की सबसे महान् संस्था गुरुकुल कांगड़ी से वेदालंकार उपाधि प्राप्त करके उनके हृदय में भारतीय संस्कृति की अमर ज्वाला और अधिक प्रविष्ट हो उठी। इस नवयुवक

की हिन्दूत्व के प्रति अद्‌भुत निष्ठा को देखकर स्व० प० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने उन्हें अनेक बार आशीर्वाद प्रदान किया । पं० इन्द्रजी के दिवंगत होने के उपरान्त जब ये उनकी पुस्तक 'लोकमान्य तिलक' की भूमिका के लिए भारत के राष्ट्रपति स्व० राजेन्द्रबाबू से मिले तो उन्हों ने भी कहा–"तुम्हारे जैसे निष्ठावान् नवयुवक एवं गुरुकुल के स्नातक ही भारतीय संस्कृति एवं परम्परा की रक्षा करेंगे–ऐसा मेरा विश्वास है ।"

गुरुकुल कांगड़ी से वेदालंकार उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त भाई दिलीप ने हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय से एम० ए० किया तथा कुछ समय के लिए वहीं अध्यापन भी करते रहे । आप आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ोदरा में संस्कृत विभागाध्यक्ष रहे ।

किन्तु जिसके हृदय में हिन्दुत्व का प्रचार करने की तीव्र लालसा हो, वह किसी व्यवसाय में कैसे टिकता ? वह नौकरी छोड़कर सर्वप्रथम अफ्रीका गया, वहां उसने एक नया तमाशा देखा, वहां बसे हिन्दू आपसी मतभेदों में फंसे थे । इन्होंने सभी सिख, जैन, सनातनधर्मी तथा आर्यसमाजी संस्थाओं में एकता लाने का प्रयत्न किया । साथ ही इन्होंने देखा कि वहां के मूलनिवासियों के मन में हिन्दुओं के प्रति अच्छी धारणा नहीं है । उनके मन में भारतीयों एवं भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए कई उपाय बताए । ●

(पृष्ठ 11 का शेष)

पैसा नहीं दोगे, तो भी आज तो देना ही होगा । आखिर इसके मां बाप हम ही तो हैं । औरों को तो चोरी छिपे उनके घर वाले कुछ न कुछ दे हीं जाते हैं खाने पीने की चीजें, इसे कभी कुछ नहीं मिलता ।

ब्रह्मचारियों ने और महेन्द्रदेव ने आज जीवन में प्रथम बार कुलपिता का भयंकर रूप निहारा था । वे कड़कते-स्वर में दहाड़े मूर्खे ? तुझे पता नहीं है कि तू तो अकेली देवेन्द्र, महेन्द्र और धर्मेन्द्र की मां हो सकती है किन्तु मैं तो इन तीन सौ बच्चों का पिता हूं, तीन सौ आनों के हिसाब से जब तक सबको नहीं दे सकता तब तक तेरे महेन्द्र को कैसे दे सकता हूं, तू तो बावली है । मैं महात्मा मुन्शीरामजी की भांति फीस नहीं लेता, मेरा गुरुकुल तो ईश्वर विश्वास पर चलता है, दोनों प्रतिनिधि सभाएं विरोध में है फिर इतना परिवार चलाना हंसी खेल थोड़े ही है । आज के बाद मुझसे अपने अकेले बच्चे के बारे में कुछ न कहना, तुझे मेरी शपथ है, मैं तो तीन सौ का ही पिता हूं एक को एक आना कैसे दूं ? और इनका यह आदर्श आज भी अजेय है, अपराजित है, उदाहरणीय है । ●

स्व० श्री विश्वनाथ

[हिन्दी प्रकाशन के पुरोधा तथा धर्म की बलिवेदी पर शहीद होने वाले हुतात्मा महाशय राजपाल जी के सुपुत्र श्री विश्वनाथ जी का दिनांक 16 जून को सांय 4 बजे निधन हो गया । 27 जुलाई 1920 को लाहौर में जन्में श्री विश्वनाथ जी अर्थशास्त्र में एम० ए० थे । श्री विश्वनाथ जी आजीवन विभिन्न सामाजिक गतिविधियों में निमग्न रहे । आपके निधन से आर्यसमाज, डी० ए० वी० संस्थाओं तथा प्रकाशन के क्षेत्र को गहरा झटका लगा है । आप पिछले 65 वर्षों से प्रकाशन क्षेत्र से जुड़े रहे । आपको 9 वर्ष की अवस्था में ही प्रकाशन क्षेत्र में आना पड़ा, जब आपके पिता महाशय राजपाल जी की एक मतान्ध कट्टरवादी मुस्लिम ने हत्या कर दी ।

1947 में देश के विभाजन के पश्चात् आपने दिल्ली में पुनः राजपाल एण्ड सन्स को स्थापित किया । थोड़े ही समय में यह हिन्दी के प्रायः सभी प्रसिद्ध साहित्यकारों का सर्वप्रिय प्रकाशन संस्थान बन गया ।

आप आर्य प्रादेशिक सभा तथा डी० ए० वी० कॉलेज मैनेजिंग कमेटी के वरिष्ठ उपाध्यक्ष रहे ।]

पं० भीमसेन विद्यालंकार स्मृति सम्मान के अवसर पर श्री विश्वनाथ जी द्वारा व्यक्त विचार

हिन्दी भवन द्वारा दिया गया सम्मान मेरी दृष्टि में बहुमूल्य है क्योंकि इसके साथ पं० भीमसेन विद्यालंकार जी का नाम जुड़ा है । संभवतः आप जानते होंगे कि पूरे दस वर्ष उनके प्रेस में मैं उनका भागीदार था-1937 से लेकर 1947 तक । प्रायः प्रतिदिन ही उनसे मिलने का अवसर मिलता था । वे बिना कुछ कहे ही मुझे इतनी प्रेरणा दे जाते थे, उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था । उनकी सादगी, सरलता, सौम्यता, सत्यवादिता और न जाने कितने गुण थे जो मुझे प्रभावित करते थे । मैं जो भी कुछ जीवन में बन पाया हूं उसमें कहीं भीमसेन जी के व्यक्तित्व का योगदान है । कविवर मैथिलीशरण गुप्त की दो पंक्तियां हैं....

'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाए तो सहज सम्भाव्य है'

भीमसेन जी के चरित्र से मेरे जैसे नवयुवक को जीवन-मूल्य मिले । ऐसे व्यक्ति आज के युग में कहां हैं । ●

आर्यविद्वानों के सत्यपरामर्श–

● 'ओ३म्-सुप्रभा' (मा०) छः वर्ष से निरन्तर प्रकाशित होकर न जाने कितने सुधी समाजसेवी अनुरागी जनों की सेवा में निःशुल्क वैदिक विचार ज्ञान बोध से सम्पोषित करने में अनवरत लगे हैं । जहां तक मुझे स्मरण आता है 4-5 वर्ष से मुझे वह वेद ज्योति प्रदायिनी रश्मियों से सुसंचित कर स्वनाम को धन्यता दे रही है । आप स्वयं भी मूल में, शंकर की तरह प्रकट होकर अपने नाम के साथ "गुप्त" जोड़े रहकर आत्म विज्ञापन और भौतिक सम्पदा को यज्ञमय बनाते हुए लोकेषणा की ज्ञान आहुतियां दे रहे हैं । लघुकाय कलेवर वाली, "ओ३म्-सुप्रभा" से लोक मंगलकारी आलोक रश्मियां वितरण में निरत हैं । आपका गहन अध्ययन, अनुशीलन उन रश्मियों से प्रसरता दिख रहा है । प्रभु से प्रार्थना है आप शताधिक आयु और सुस्वास्थ्य के अधिकारी बनें । मैं तो 85 वीं आयु वर्ष को पूरा करने की ओर अग्रसर होते हुए थरथराने लगता हूं । मन की उछल-कूद में तो अब भीगोती तेजस्विता है, क्योंकि उसका बोध तो अन्तर देव (आत्मदेव) निरन्तर करता चल रहा है, पर दैहिक शैथिल्य अपना प्रभाव दिखा रहा है । फिर लिखने-पढ़ने की सक्रियता बनाये रखने में सचेष्ट हूं । कल ही आपकी "सुप्रभा" हाथ आयी उसे कुछ समय में ही एक एक पंक्ति अमृत बूंद की भांति पी गया । आपकी मधु संचय वृत्ति से संचित अमृत सामग्री को आत्मसात कर कोई भी स्वाध्यायशील साधक शतायु होने की शक्ति का अर्जन कर जीवन को कृतकृत्य कर सकता है । मैं तो पौराणिक अशिक्षित परिवार में जन्म लेकर चम्बलीधरा की क्षत-विक्षत घाटी में उगा और फिर शिक्षा लालसा, अपनी बाल विधवा ताई की शरण में शिक्षित होने और डी० ए० वी० स्कूल मैनपुरी का छात्र होने से फिर उसी की प्रारम्भिक पाठशाला में लम्बे काल तक शिक्षक रहने और विद्वानों, सन्तों सन्यासियों की ज्ञानमयी अमृतवर्षा की कुछ बूंदे पा, हिन्दी आन्दोलन में 1957 में अम्बाला चण्डीगढ़ के गुरुमुखी हिन्दी संग्राम में सत्याग्रही बनने, अम्बाला जेल में 5-6 मास तक 14 सौ सत्याग्रही जनों का सत्संग लाभ का प्रसाद प्राप्त किया है आज उसी का यह प्रभाव है कि आपका कृपा भाव मिला ।

–आर्यकवि लाखनसिंह भदौरिया "सौमित्र",
भोजपुरा, मैनपुरी (उ०प्र०)

● "ओ३म्-सुप्रभा" आपके वैदिकधर्म और आर्य विचारधारा के प्रति लगन और समर्पण के भाव को प्रदर्शित करती है । इस छोटी सी पत्रिका में आपने बहुत सारे विषयों को छुआ है । महर्षि स्वामी दयानन्द सारस्वती वर्तमान युग के युगदृष्टा और युगसृष्टा थे । पूर्व के ऋषियों ने तो एक-एक विषय को लेकर अपने ज्ञान और बुद्धि के द्वारा इस संसार के लोगों का

मार्गदर्शन किया परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पूर्व के सब ऋषियों की विचारधाराओं की जो कि अलग-अलग प्रकार के व्याख्या में लगती थीं एक ही सूत्र में पिरोकर सभी की बात का समर्थन किया है चाहे कपिल, कणाद, गौतम, याज्ञवल्क्य आदि सभी की प्रस्तुति को वेदों की शैली से मिलान करके भावों को स्पष्ट किया है ।

मनसा वाचा कर्मणा होकर सत्याधार ।
ऋषि दयानन्द ने किया बड़ा जगत् उपकार ॥

आपकी इस पत्रिका में वैदिक परम्पराओं को प्रचारित और प्रसारित करने के लिए "आर्य साहित्यसेवी विश्वकोश" का लेखन कार्य, महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचारधारा, महर्षि के कार्य, महर्षि का सन्देश, आर्ष साहित्य का प्रचार और प्रसार आर्यसमाज के समर्पित महापुरुषों के जीवनदर्शन आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है ।

आपका मोनोग्राम भी काफी सार्थक और श्रेष्ठ है तथा समस्त विश्व को आर्य बनाने का सन्देश देता है । पत्रिका का प्रथम कवर, पत्रिका नाम शीर्षक के साथ प्राकृतिक छटा, 'ओ३म्' का उगता सूर्य, मोर पक्षी सुन्दरता का प्रतीक कमल पुष्प आदि सब परमेश्वर की अद्भुत रचना और सुन्दर सजावट को दिखाया गया है, जो एक स्वाभाविकता को दर्शा रहा है । ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य हैं । इन सबसे यही प्रतीत होता है कि आपका पत्रिका सम्पादित करने का कार्य महर्षि के लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर है । महर्षि का कार्य आप आगे बढ़ा रहे हैं । आप यह-पत्रिका भी निःशुल्क ही प्रेषित कर रहे हैं । यह आपका बड़ा योगदान है-इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं ।

—सत्यपाल सिंह आर्य
'ओ३म् निवास', एल-30, शास्त्री नगर,
मेरठ (उ०प्र०)

(पृष्ठ 13 का शेष)

है । बृहदारण्यक उपनिषद् का याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद अपनी रोचकता के कारण प्रख्यात है । "आत्मा या अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः", यह परिणाम पुत्र, वित्त आदि के वृतान्त से इस निष्कर्ष पर पहुंचाया गया है कि मूल को पकड़े बिना इधर-उधर हाथ मारने से भता अधिगत नहीं हो सकती । इस प्रकार जितना भी अधिक हम उपनिषदों को देखते हैं उतना ही अधिक उनकी रोचक शैली प्रभावित होते हैं। आज का शिक्षा-मनोविज्ञान भी शिक्षण में शैली की रोचकता को बहुत महत्व देता है । उपनिषदों से हम यह कला सीख सकते हैं ।

आर्यसमाज : चिन्तन-अनुचिन्तन - 38

आर्यसमाज के सौ वर्ष

–स्व० पं० युधिष्ठिर मीमांसक

आर्यसमाज की शताब्दी के उत्तरार्ध में जो मुझ जैसे व्यक्तियों की तीसरी पीढ़ी युवावस्था को प्राप्त हुई उनमें तप, त्याग और स्वाध्याय की प्रवृत्ति पर्याप्त कम हो गई । जिन युवकों पर अपने गुरुजनों के जीवनों का विशेष प्रभाव था वे कुछ उत्कृष्ट बने शेष साधारण कोटि के ही रहे । स्वाध्याय की प्रवृत्ति बहुत कम व्यक्तियों में विद्यमान रही । अधिकतर तो जिनके माता-पिता परम स्वाध्यायी होते हुए भी ऐसे थे जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश भी एक बार पूरा नहीं पढ़ा था । फिर भी इस पीढ़ी के लोगों में दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति लगन थी । समय पड़ने पर तन मन धन से त्याग करने को भी उद्यत रहते थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सन् 1939 का हैदराबाद का सत्याग्रह है, जिसमें महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति के आरम्भ में विरोध होने पर भी आर्यों ने अपने बलबूते पर सफलता पाई और दुर्दान्त निजाम को झुकने के लिए मजबूर कर दिया ।

पाकिस्तान के बन जाने पर देश में जो उथल-पुथल हुई उससे पाकिस्तान से आए लोगों को अपने जीवन निर्वाह के लिए समग्र भाव से जुटना पड़ा । इस कारण वहां से आये हुए आर्यों में वर्तमान आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा भक्ति का विकास न होकर कुछ ह्रास हुआ । और इस समय में जो पीढ़ी युवा होकर आगे आई उसमें धर्म के प्रति श्रद्धा विश्वास त्याग आदि की भावना अत्यन्त निर्बल हो गई । क्योंकि सभी को अपने जीवन निर्वाह की चिन्ता में लग जाना पड़ा ।

यद्यपि कुछ समय बाद पाकिस्तान से आये हुए आर्यों ने पुनः आर्यसमाज–के कार्य में कुछ उत्साहपूर्वक भाग लेना आरम्भ किया परन्तु देश में बढ़ती हुई मंहगाई के कारण सभी व्यक्ति दिन रात आय के साधनों में ही जुट गये । उनका स्वाध्याय छूट गया । स्वाध्याय के छूटने से जो एक आर्य में थोड़ी बहुत दिव्यता अथवा अन्यों की अपेक्षा उत्कर्ष होना चाहिए था वह जाता रहा । इस समय के आर्यसमाजी अधिकतर स्वार्थी-धन-लोलुप, सत्ता लोभी एवं स्वाध्यायहीन हो गये । साप्ताहिक अधिवेशनों में पुराने वृद्ध आर्य ही उपस्थित होते हैं, नवयुवक प्रायः देखने को भी नहीं मिलते ।

स्वाध्याय के नष्ट हो जाने से आज के आर्यसमाजियों को अपने कर्तव्य अकर्त्तव्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है । न बे वैदिक शिक्षाओं को जानते हैं और न दयानन्द के मन्तव्यों से ही परिचित है इस कारण ये लोग दयानन्द के नाम पर धड़ाधड़ ऐसे कार्य करते चले जा रहे हैं जिनका दयानन्द ने बड़ी कठोरता से प्रतिवाद किया था ।

यह काल कृष्णाय: लोह काल है । स्वाध्याय के नष्ट होने से इस पर बराबर जंग लगता चला जा रहा है । इस काल में हमने ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के विरुद्ध विदेशी भाषा, सभ्यता एवं विचार धारा को प्रवाहित करने वाले धड़ाधड़ स्कूल कॉलेज खोले । इतना ही नहीं, पुराने गुरुकुल कांगड़ी, वृन्दावन, ज्वालापुर भी अपने गुरुकुलता को नष्ट करके कॉलेज बन गये । इन विपरीत कार्यों को करते हुए भी हम यही मानते हैं कि हम आर्यसमाज का प्रचार कर रहे हैं । कैसा घोर अज्ञान है, आर्य मत के नाशक कार्यक्रम को हम आर्यसमाज के प्रचार का साधन मान कर एक दूसरे से होड़ लगा रहे हैं ।

साहित्य की दुर्दशा–स्वाध्याय की प्रवृत्ति नष्ट हो जाने से आर्यसमाज में उच्चकोटि के साहित्य का लिखना और प्रकाशित होना सर्वथा रुक गया है। उच्चकोटि का पुराना साहित्य भी दुर्लभ हो चुका है । नया साहित्य जो कुछ छपता है उसमें 99 प्रतिशत रद्दी की टोकरी में डालने लायक होता है ।

आर्यसमाज के पत्रों की भी बड़ी दुर्दशा है । कोई भी पत्र बिना घाटे के नहीं चल रहा है । हमें 'वेदवाणी' के प्रकाशन का अपना अनुभव है । घाटा तो प्रति वर्ष दो ढ़ाई हजार का हो ही रहा है साथ ही यह दो प्रकार के ग्राहकों की चक्की के पाटों के बीच 27 वर्ष से पिस रही है । यदि इसमें शास्त्रीय विषयों पर जो लेख छपते हैं तो अधिकतर ग्राहक चिल्लाते हैं कि हमें लेख समझ में नहीं आते । यदि सीधे सादे साधारण लेख छपते हैं तो सौ पचास जो प्रबुद्ध ग्राहक हैं वे लिखते हैं कि 'वेदवाणी' का स्तर गिर गया है । 27 वर्षों में न ये साधारण पत्रिका बन सकी न शास्त्रीय ।

स्वाध्याय की न्यूनता के कारण आर्यसमाजों के साप्ताहिक व्याख्यानों का स्तर भी बहुत गिर गया है । वहां किसी शास्त्रीय विषय पर व्याख्यान देना अपने आपको मूर्ख बनाना है । जो व्याख्याता जितनी ही चिकनी चुपड़ी लच्छे दार परन्तु सराहनीय बातों में जनता का मनोरंजन करे वही महा व्याख्याता समझा जाता है । ●

प्रकाशक-मुद्रक-स्वामी-मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं०17, कैलाशनगर, दिल्ली-31 (फोन-22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र–दिल्ली ।